मनुष्य के जानने योग्य ज्ञान की अद्भुत बातें

अपने चारों ओर सृष्टि की रचना की बहुतायत को देख कर स्वाभाविक विचार होता है कि इसको किसने और किसलिये बनाया। सुनने में आया है कि इसको परमात्मा ने जीवों के कर्मानुसार सुख, दुःख भोगने के लिये बनाया है जिससे परमेश्वर के महत्व, कारीगरी और विचित्र रचनायें देखकर परमेश्वर का ज्ञान होवे और जगत से वैराग्य होवे। जिससे जीव केवल परमात्मा के स्वरूप को चिंतन करता हुआ परमेश्वर को प्राप्त हो जाये। यही इसका मुख्य उद्येश्य है। परन्तु हमको नानाप्रकार का दुःख, क्लेश, यंत्रणायें होती हैं और दीखती हैं, तो यही विचार होता है कि परमेश्वर ने इस जगत् को क्यों बनाया जिसमें जीवों को इतना दुःख होता है, न बनाता तो अच्छा होता क्योंकि जीव भी सुखी रहते और आप भी शांत मौज में सोता रहता। ऐसे बखेड़े में पड़ना परमात्मा की बुद्धिमानी का काम नहीं है।

परन्तु हम इससे डरते हुये कहते हैं, परमात्मा की महिमा, माया, लीला अपार है। जिसको वेदादि, ऋषि, मुनि, देवता कोई भी पार नहीं पा सकता है। उसका ज्ञान समुद्र के समान है और हमारी बुद्धि कुल्हवावत् है। कुल्हवा में सारा समुद्र कैसे भर सकता है? ऐसे परमात्मा की रचना और महिमा हम बुद्धि द्वारा कैसे जान सकते हैं? जो इन्द्रिय, मन, वाणी की गति से बाहर है।

परन्तु हम किन्हीं-किन्हीं शास्त्रों के वचनों से और अपने नित्य के अनुभव से यह निश्चय करते हैं कि बहुतेरे जीवों में, विशेषकर मनुष्यों में जन्म से ही दुःखी, दीन, नींच, लंगड़े, लूले, अंधे, अपाहज, रोगी, मंदबुद्धि वाले, मलिन, कुरूप इत्यादि और दूसरी ओर सुखी, समृद्ध, सुडोल, सुंदर, अच्छी आंखों वाले, सर्वांगों से हृष्ट पुष्ट, अच्छी स्मृति, बुद्धि व कुल वाले हैं। राजा हैं। सन्यासी हैं। ब्राह्मण हैं। एक पालकी पर चढ़कर चलता है, एक बिना पालकी के। ये सब विषमतायें कैसे उत्पन्न हुई हैं? यदि कहो कि पूर्व कर्मों के अनुसार। जैसे-जैसे जीव ने शुभाशुभ कर्म किये हैं। यह उनका फल है। जिन्होंने पुण्य कर्म किये हैं, दूसरे जीवों को सुख दिया है, दान पुण्य किया है, वे सुखी हैं और जिन्होंने विपरीत किया है वे दुःखी हैं।

तो अब प्रश्न होता है कि यदि मनुष्य को अपने पिछले कर्मों का ज्ञान होता,कि मैंने पूर्वजन्म में अमुक पाप किया था उसका यह दुःख रूपी फल मुझे मिल रहा है और अमुक पुण्य कर्म किया था जिसका यह सुख रूपी फल मिल रहा है, तो कोई भी पाप कर्म न करता। सब के सब पुण्य रत रहते। जब तक कोई अध्यक्ष अपराध करने वाले के चित्त पर अपराध सिद्ध करने का प्रमाण न दे देवे तब तक उसे दंड देने का अधिकार नहीं है। इसलिये परमात्मा हमको शुभाशुभ का ज्ञान कराता और पीछे दंड और पुरुष्कार देता तो अच्छा होता।

एक यवन आचार्य से पूछा गया कि 'यह सृष्टि संग्राम रूपा और सुखी-दुखी किसने बनायी है?' उसने कहा 'खुदा ताला ने'। फिर पूछा 'उसने किसी को जन्म से सुखी और किसी को दुखी क्यों बनाया, उसके लिये तो सब पुत्र समान हैं?' तो उत्तर मिला कि 'इसकी कतारें बनायी हुई हैं। इनमें दुःखी चलते रहें। इनमें सुखी चलते रहें। एवं परस्पर एक दूसरे को देखकर सुखी-दुखी होते रहें। बस यह उसकी मर्जी कुदरत है आगे हम कुछ नहीं जानते'।

परमेश्वर के लिये यह कभी ठीक नही हो सकता कि किसी को बिना कारण के ही दुखी-सुखी बनावे। वह तो पक्षपात रहित है। वह करुणालय-वरुणालय है, और अपार दया करने वाला है।

ऐसे ही एक बार ईसाइयों के एक बड़े आचार्य से पूछा कि 'तुम लोग पूर्व जन्म ही नहीं मानते तो सृष्टि किसने रची है?' उसने कहा 'ईश्वर ने'।

अब प्रश्न उठता है कि उसने एक को जन्म से ही लंगड़ा-लूला और अंधा क्यों बनाया? और दूसरे को सर्वांग सुंदर सुखी क्यों बनाया? अपनी मर्जी से बिना पुण्य पाप किये बनाया तो वह ईश्वर समदर्शी, पक्षपात रहित नहीं हो सकता। परमेश्वर सबको दुःखी-सुखी बनाता तो वेदों में, शास्त्रों में और महात्माओं द्वारा एक स्वर से यह क्यों कहा जाता कि परोपकार करो। दुखियों के दुख दूर करो। अंधों को आँख दो। रोगियों के रोग दूर करो। कंगालों को धन दो और भूखों को भोजन दो।

यदि राजा किसी अपराधी को कारागार में डाल दे तो जैसे उसे मुक्त करने वाले को दंड मिलता है। इसी प्रकार से यह सुखी-दुःखी परमेश्वर ने बनाये होते, तो इनके विरुद्ध कर्म करने वालों को परमेश्वर दंड देता। पर ऐसा नहीं है। इसके विपरीत उनको स्वर्गधाम और मोक्ष की प्राप्ति कराता है। इससे सिद्ध है कि सुखी-दुःखी जो संतान उत्पन्न होती है वह माता पिता के कर्म से होती है।

वेद में कहा है कि माता-पिता गर्भाधान से पूर्व अमुक-अमुक कर्म और भोजन करें और पीछे संकल्प करें कि हम एक शूरवीर और भक्त को उत्पन्न करें। रामचन्द्र जी की माता जब वह गर्भ में थे, अग्निहोम करती थीं और तत्पश्चात परमेश्वर से प्रार्थना करती थी कि 'हे परमेश्वर! हमारे गर्भ से स्वयं अवतार लो। भारतवर्ष को और सब दीन दुखियों को सुख दो। अत्याचारियों से मुक्त करो। सुख, शान्ति, प्रेम और भक्ति बढ़ाओ। सबके साथ समान बर्ताव करो'। अभिप्राय यह है कि उनके माता पिता के संकल्पों का ही फल था जिससे रामअवतार हुआ।

ऐसे ही देवकी और वसुदेव चाहते रहते थे कि हमारे गर्भ से भगवान अवतार लें और सारे संसार के लिये मुक्ति का द्वार खोल दें। ठीक वैसा ही हुआ। उनका उपदेश गीता में सबके लिये समान है।

एक ऋषि जब उनकी पत्नि के गर्भ रहा तब से उसको देववाणी, वेद के मंत्र और शास्त्रार्थ करने की कथा सुनाया करते थे। उनका पुत्र गर्भ से ही अपने पिता के उच्चारण की अशुद्धियाँ बताने लगा। तो पिता ने क्रोध में लात मारी। जिससे पुत्र का जन्म आठ जगह से टेढ़े शरीर के साथ हुआ। पुत्र का नाम अष्टावक्र रखा गया। अष्टावक्र पहुँचे हुए महात्मा, पंड़ित और ज्ञानी बने। एक समय वह राजा जनक की सभा में गये। उनके टेढ़े-मेढ़े और कुरूप शरीर को देखकर जनक सहित सभी विद्वान हँस पड़े। उन सभी को हँसता देख अष्टावक्र ने भी अट्टाहास किया। यह देखकर राजा जनक और सभी उपस्थित जनों को बड़ा आश्चर्य हुआ और अष्टावक्र से हँसने का कारण पूछा गया। अष्टावक्र जी ने कहा 'मेंने तो सुना था कि जनक और उनके सभासद विद्वानों की परीक्षा करते हैं। परन्तु वे तो हड्डी परीक्षक कसाई और त्वचा परीक्षक चमार हैं'। यह सुनकर उपस्थित जन बहुत लज्जित हुए। सभी ने अष्टावक्र जी का अभिवादन किया और उचित आसन दिया।

अष्टावक्र जी को मिला सम्मान पिता द्वारा उनकी गर्भवती माँ को दिये गये उपदेश रूपी कर्म का फल है। तथा उनका अनादर उनके पिता द्वारा उनकी गर्भवती माँ को दिये गये पदाघात रूपी कर्म का फल है। अष्टावक्र जी को इतना ज्ञानवान और कुरूप भगवान ने नहीं बनाया अपितु उनके माता-पिता के कर्मों के फल स्वरूप ही वह ज्ञानवान और कुरूप बने। इसी तरह माता-पिता के कर्मों का फल संतान को और संतान के कर्मों का फल माता-पिता को भोगना पड़ता है।

उपनिषदों में लिखा है, मनुष्य अपने संकल्पानुसार जैसी चाहे वैसी संतानोत्पत्ति कर सकता है। यदि विद्वान व अच्छे पुत्र का संकल्प हो तो परमात्मा से प्रार्थना के साथ ही क्षीर और चावल धी के

साथ खाना चाहिए। ऐतरेयोपनिषद में लिखा है कि पिता जो अन्न और जलादि का आहार करता है उससे वीर्य उत्पन्न होता है। जीव का वीर्य रूप में पिता के शरीर में स्थित होना प्रथम जन्म है। गर्भाधान द्वारा स्त्री के शरीर में अंगभूत होना द्वितीय जन्म है तथा माँ के गर्भ से बाहर आना तीसरा जन्म है। पिता से संतान की आकृति आती है। सूक्ष्म यंत्र द्वारा देखने पर वीर्य में पुरुष की सारी आकृति विद्यमान बताई जाती है। गर्भावस्था में स्त्री के आहार से जीव का शरीर बनता है। कितनी ही पीड़ियों तक जीव अमुक का पुत्र, पौत्र और प्रपुत्र की तरह जाना जाता है। जीव का रूप माता-पिता तथा गर्भकाल में माता के किसी और को देखने, ध्यान करने से उस पर भी जाता है। एक गर्भवती अंग्रेज महिला के कमरे में एक हब्शी का चित्र था। जिसे वह बार-बार देखती और ध्याती थी। उससे उत्पन्न बालक का रूप हब्शी जैसा ही था। यह देखकर अंग्रेजों को बड़ा आश्चर्य हुआ तथा उन्होंने हिंदुओं में प्रचलित इस धारणा को कि दृष्टि व ध्यान से रूप रंग बदल जाता है सच माना। ऐसे ही उग्रसेन की रानी की राक्षस पर निगाह पड़ने से कंस उत्पन्न हुआ।

इस कारण गर्भावस्था में स्त्री की बहुत रक्षा करनी चाहिये। वह अपने पति के चित्र को देखे या उसका ध्यान करे। अपनी तस्वीर को दर्पण में देखे। राम-कृष्ण आदि अवतारों की, देवताओं की, ऋषि, मुनि और महात्माओं की मूर्तियों का ध्यान करे। उनके जीवन चरित्रों की कथा सुने। क्षीर, चावल, दूध, फल, ब्राह्मी, वंशलोचन, ज्योतिष्मती, गिलोय, गाय का घी और शहद आदि का सेवन करे। पति को चाहिये कि कभी किसी प्रकार का शोक, क्रोध, दुःख उसे न होने दे। नीच स्त्री से बात न करने दे। एकांत एवं अच्छे स्थान पर रखे। वनों में, जंगलों में, बागों में और फूलों में लेकर जाये। साधु-महात्माओं के दर्शनों को लेकर जाये और जो भी स्त्री की इच्छा हो, उसे पूर्ण करे। कर्ज लेना बुरा है। परंतु गर्भावस्था में यदि आवश्यकता हो तो कर्ज लेकर भी अपनी स्त्री की अच्छी इच्छाऐं अवश्य पूर्ण करे। स्त्री को अच्छे व खुले मकान में रखे। इन सब बातों का ध्यान रखने से संतान अवश्य ही ज्ञानवान, धैर्यवान और पराक्रमी होगी।

गर्भ के अंदर जब अभिमन्यु था तब अर्जुन ने उसकी माता को चक्रव्यूह तोड़ने की कथा सुनाई थी। वह अभिमन्यु को सोलह वर्ष की आयु में ज्यों की त्यों याद रही।

ऐसे ही आल्हा, ऊदल तथा बोनापार्ट जब अपनी माताओं के गर्भ में थे। उस समय उनकी मातायें लड़ाइयों में सिपाहियों को पानी पिलाती थीं। युद्ध का दृश्य देखती थीं तथा सुनती थीं। इन सब बातों का ही प्रभाव था कि इन सभी ने जबसे सुरत संभाली तब से जीवन पर्यन्त युद्ध ही करते रहे।

गर्भ के समय माता जो कुछ खायेगी, देखेगी, सुनेगी और सोचेगी, वैसी ही संतान उत्पन्न होगी। इसलिये माता-पिता को चाहिये कि वे संतान के लिये अच्छा काम करें। संतान के सुख-दुःख और पाप-पुण्य का उत्तरदायित्व माता-पिता पर है। परमात्मा किसी को दीन-दुःखी और पराधीन नहीं बनाता। वह तो इनसे छूटने और छुटाने का उपदेश करता है। वह इन सबसे असंग है।

अब रही पुण्ययोनि, पापयोनि, कंगाल, भाग्यवान, राजा, रंक, ऊँच और नीच की बात। सो यह भी परमेश्वर ने नहीं बनाये और न बनाता है। यह सब यहाँ की बुरी व्यवस्था के फल हैं। परमेश्वर तो कल्याण करने वाला और मोक्ष देने वाला है।

बोलो सच्चिदानंद ब्रह्म की जय